□ श्री विजय मुनि, शास्त्री, साहित्यरत्न

[धर्म एवं दर्शन के प्रकांड पंडित, 'विश्वदर्शन की रूप-रेखा' जैसे गंभीर ग्रन्थों के लेखक। कुशल पत्रकार, कथाशिल्पी, प्रभावशाली प्रवक्ता, चिंतक एवं प्रबुद्ध मनीषी]

# भारतीय दर्शन के सामान्य सिद्धान्त

□

## आध्यात्मिक पृष्ठभूमि

भारतीय दर्शन फिर भले ही वह किसी भी सम्प्रदाय का क्यों न रहा हो, उसका मूल स्वर अध्यात्मवाद रहा है। भारत का एक भी इस प्रकार का कोई सम्प्रदाय नहीं है, जिसके दर्शन-शास्त्र में आत्मा, ईश्वर और जगत के सम्बन्ध में विचारणा न की गई हो। आत्मा का स्वरूप क्या है? ईश्वर का स्वरूप क्या है? और जगत की व्यवस्था किस प्रकार होती है? इन विषयों पर भारत की प्रत्येक दर्शन-परम्परा ने अपने-अपने दृष्टिकोण से विचार किया है। जब आत्मा की विचारणा होती है, तब स्वाभाविक रूप से ईश्वर की विचारणा हो ही जाती है। इन दोनों की विचारणा के साथ जगत की विचारणा भी आवश्यक हो जाती है। दर्शन-शास्त्र के ये तीन ही विषय मुख्य माने गए हैं। आत्मा चेतन है, ज्ञान उसका स्वभाव है, इस सत्य को सभी ने स्वीकार किया है। उसकी अमरता के सम्बन्ध में भी किसी को सन्देह नहीं है। भारतीय-दर्शनों में एक मात्र चार्वाक-दर्शन ही इस प्रकार का है, जो आत्मा को शरीर से भिन्न नहीं मानता। वह आत्मा को भौतिक मानता है, अभौतिक नहीं। जब कि समस्त दार्शनिक आत्मा को एक स्वर से अभौतिक स्वीकार करते हैं। आत्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध में और उसकी अमरता के सम्बन्ध में किसी भी भारतीय दार्शनिक-परम्परा को संशय नहीं रहा है। आत्मा के स्वरूप और लक्षण के सम्बन्ध में तथा संख्या के सम्बन्ध में भेद रहा है, पर उसके अस्तित्व के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का भेद नहीं रहा। ईश्वर के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि किसी-न-किसी रूप में सभी दार्शनिकों ने उसके अस्तित्व को स्वीकार किया है, परन्तु ईश्वर के स्वरूप के सम्बन्ध में तथा लक्षण के सम्बन्ध में पर्याप्त भेद रहा है। जगत के अस्तित्व के सम्बन्ध में किसी भी दर्शन-परम्परा को सन्देह नहीं रहा। चार्वाक भी जगत के अस्तित्व को स्वीकर करता है। अन्य सभी दर्शन-परम्पराओं ने जगत के अस्तित्व को स्वीकार किया है, और उसकी उत्पत्ति एवं रचना के सम्बन्ध में अपनी-अपनी पद्धति से विचार किया है। किसी ने उसका आदि और अन्त स्वीकार किया है, और किसी ने उसे अनादि और अनन्त माना है।

दर्शन-शास्त्र सम्पूर्ण सत्ता के विषय में कोई धारणा बनाने का प्रयत्न करता है। उसका उद्देश्य विश्व को समझना है। सत्ता का स्वरूप क्या है? प्रकृति क्या है? आत्मा क्या है? और ईश्वर क्या है? दर्शन-शास्त्र इन समस्त जिज्ञासाओं का समाधान करने का प्रयत्न करता है। दर्शन-शास्त्र में यह भी समझने का प्रयत्न किया जाता है, कि मानव जीवन का प्रयोजन और उसका



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल्य क्या है ? तथा जगत के साथ उसका क्या सम्बन्ध है ? इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि दर्शन-शास्त्र जीवन और अनुभव की समालोचना है।

दर्शन-शास्त्र का निर्माण मनुष्य के विचार और अनुभव के आधार पर होता है। तर्कनिष्ठ विचार ज्ञान का साधन रहा है। दर्शन तर्क-निष्ठ विचार के द्वारा सत्ता के स्वरूप को समझने का प्रयत्न करता है।

पाश्चात्य-दर्शन में सैद्धान्तिक प्रयोजन की प्रधानता रहती है। वह स्वतन्त्र चिन्तन पर आधारित है, और आप्तप्रमाण की उपेक्षा करता है। नीति और धर्म की व्यावहारिक बातों से वह प्रेरणा नहीं लेता। जबकि भारतीय-दर्शन आध्यात्मिक चिन्तन से प्रेरणा पाता है। वास्तव में भारतीय-दर्शन एक अध्यात्म शोध एवं खोज है। भारतीय-दर्शन सत्ता के स्वरूप की जो खोज करता है, उसके पीछे उसका उद्देश्य मानव-जीवन के चरम साध्य मोक्ष को प्राप्त करना है। सत्ता के स्वरूप का ज्ञान इसलिए आवश्यक है, कि वह निःश्रेयस और परम-साध्य को प्राप्त करने का एक साधन है। इस आधार पर यह कहा जाता है, कि भारतीय-दर्शन अपने मूल स्वरूप में एक आध्यात्मिक-दर्शन है, भौतिक-दर्शन नहीं।

यद्यपि भारतीय-दर्शन में भौतिकता की व्याख्या की गई है, फिर भी इसका मूल स्वभाव आध्यात्मिकता ही रहा है। इसका सर्वप्रथम प्रमाण तो यह है कि भारत में धर्म और दर्शन को एक दूसरे पर आश्रित माना गया है। परन्तु धर्म का अर्थ अन्ध-विश्वास नहीं, तर्क-पूर्ण अनुभव माना गया है। भारतीय-परम्परा के अनुसार धर्म आध्यात्मिक-शक्ति को प्राप्त करने का एक व्यावहारिक उपाय एवं साधन है। दर्शन-शास्त्र सत्ता की मीमांसा करता है, और उसके स्वरूप को विचार के द्वारा पकड़ता है, जिससे मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः स्पष्ट है कि भारतीय-दर्शन एक बौद्धिक विलास नहीं है, बल्कि वह एक आध्यात्मिक खोज है। भारतीय-दर्शन चिन्तन एवं मनन के आधार पर प्रतिष्ठित है, लेकिन उसमें चिन्तन और मनन का स्थान आगम, पिटक एवं वेदों की अपेक्षा गौण है। भारतीय दर्शन की प्रत्येक परम्परा आप्तवचन अथवा शब्दप्रमाण पर अधिक आधारित रही है। जैन अपने आगम पर अधिक विश्वास करते हैं, बौद्ध अपने पिटक पर अधिक श्रद्धा रखते हैं और वैदिक-परम्परा के सभी सम्प्रदाय वेदों के वचनों पर ही एक मात्र आधार रखते हैं। इस प्रकार भारतीय-दर्शन में प्रत्यक्ष अनुभूति की अपेक्षा परोक्ष अनुभूति पर अधिक बल दिया गया है।

**भारत के दार्शनिक सम्प्रदाय**

भारत के दार्शनिक सम्प्रदायों को अनेक विभागों में विभाजित किया जा सकता है। भारतीय विद्वानों ने भी उनका वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया है। आचार्य हरिभद्र ने अपने 'षड्दर्शन समुच्चय' में, आचार्य मध्व ने 'सर्व-दर्शन-संग्रह' में, आचार्य शंकर ने 'सर्व-सिद्धान्त-संग्रह' आदि में दर्शनों का वर्गीकरण विभिन्न प्रकार से किया है। पाश्चात्य-दर्शन परम्परा के दार्शनिकों ने वर्गीकरण की जो पद्धति स्वीकार की है, वह भी एक प्रकार की न होकर अनेक प्रकार की है। सब से अधिक प्रचलित पद्धति यह है कि भारतीय-दर्शन को दो भागों में विभाजित किया जाता है—आस्तिक-दर्शन और नास्तिक-दर्शन। आस्तिक दर्शन इस प्रकार हैं—सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा और वेदान्त। नास्तिक-दर्शन इस प्रकार हैं—चार्वाक, जैन और बौद्ध। परन्तु यह पद्धति न तर्क पूर्ण है, और न समीचीन। वैदिक-दर्शनों को आस्तिक कहने का क्या आधार रहा है, और अवैदिक दर्शनों को नास्तिक कहने का क्या आधार रहा है, यह स्पष्ट नहीं है ? इसका एक मात्र आधार शायद यही रहा है कि वे वेद वचनों में विश्वास नहीं करते। यदि वेद-वचनों में विश्वास नहीं करने के आधार पर ही चार्वाक, जैन और बौद्ध को नास्तिक कहा जाता है, तब यही मानना चाहिए, जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्ति चार्वाक-ग्रन्थों में, जैन-आगमों में और बौद्ध-पिटकों में विश्वास नहीं करते, वे भी नास्तिक ही हैं। इस प्रकार भारत का कोई भी दर्शन आस्तिक नहीं रहेगा।

यदि यह कहा जाए कि ईश्वर को स्वीकार नहीं करता वह नास्तिक है, और इस दृष्टि से चार्वाक, जैन और बौद्ध नास्तिक कहे जाते हैं। तब इसका अर्थ यह होगा, कि सांख्य और योग तथा वैशेषिक-दर्शन भी नास्तिक परम्परा में परिगणित होंगे। क्योंकि ये भी ईश्वर को स्वीकार नहीं करते। वेदों का सबसे प्रबल समर्थक मीमांसा-दर्शन भी ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करता तब वह भी नास्तिक कहा जाएगा। अतः आस्तिक और नास्तिक के आधार पर भारतीय-दर्शनों का विभाग करना यह एक भ्रम परिपूर्ण धारणा है।

वास्तव में भारतीय-दर्शनों का विभाग दो रूपों में होना चाहिए—वैदिक-दर्शन और अवैदिक-दर्शन। वैदिक-दर्शनों में षड्दर्शनों की परिगणना हो जाती है, और अवैदिक-दर्शनों में चार्वाक, जैन और बौद्ध-दर्शन आ जाते हैं। इस प्रकार भारतीय-दर्शन-परम्परा में मूल में नव दर्शन होते हैं—चार्वाक, जैन, बौद्ध, सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा और वेदान्त। ये नव दर्शन भारत के मूल दर्शन हैं। कुछ विद्वानों ने यह भी कहा है, कि अवैदिक-दर्शन भी षड् हैं—चार्वाक, जैन, सौत्रान्तिक, वैभाषिक, योगाचार और माध्यमिक। इस प्रकार वैदिक-परम्परा के दर्शन भी छह हैं, और अवैदिक-दर्शन भी छह होते हैं। इस प्रकार भारत के मूल दर्शन द्वादश हो जाते हैं।

न्याय और वैशेषिक-दर्शन में कुछ सैद्धान्तिक भेद होते हुए भी प्रकृति, आत्मा और ईश्वर के विषय में दोनों के मत समान है। कालक्रम से इनका एकीभाव हो गया और अब इनका सम्प्रदाय न्याय-वैशेषिक कहा जाता है। सांख्य और योग की भी प्रकृति और पुरुष के विषय में एक ही धारणा है। यद्यपि सांख्य निरीश्वरवादी है, और योग ईश्वरवादी है। अतः कभी-कभी इनको एक साथ सांख्य-योग कह दिया जाता है। मीमांसा के दो सम्प्रदाय हैं—जिनमें से एक के प्रवर्तक आचार्य कुमारिल भट्ट हैं, और दूसरे के आचार्य प्रभाकर। इनको क्रमशः भट्ट सम्प्रदाय और प्रभाकर सम्प्रदाय कहा जाता है। वेदान्त के भी दो मुख्य सम्प्रदाय हैं—जिनमें से एक के प्रवर्तक आचार्य शंकर हैं और दूसरे के आचार्य रामानुज। शंकर का सिद्धान्त अद्वैतवाद अथवा केवलाद्वैतवाद के नाम से विख्यात है, और रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद के नाम से। वेदान्त के कुछ अन्य छोटे-छोटे सम्प्रदाय भी हैं। उन सभी का समावेश भक्तिवादी-दर्शन में किया जा सकता है। वेदान्तपरम्परा के दर्शनों में मीमांसा-दर्शन को पूर्व-मीमांसा और वेदान्त-दर्शन को उत्तर-मीमांसा भी कहा जा सकता है। इस प्रकार इन विभागों में वैदिक-परम्परा के सभी सम्प्रदायों का समावेश आसानी से किया जा सकता है।

बौद्ध-दर्शन परिवर्तनवादी दर्शन रहा है। वह परिवर्तन अथवा अनित्यता में विश्वास करता है, नित्यता को वह सत्य स्वीकार नहीं करता। बौद्धों के अनेक सम्प्रदाय हैं—उनके वैभाषिक और सौत्रान्तिक सर्वास्तिवादी हैं। इन्हें बाह्यार्थवादी भी कहा जा सकता है। क्योंकि ये दोनों सम्प्रदाय समस्त बाह्य वस्तुओं को सत्य मानते हैं। वैभाषिक बाह्य प्रत्यक्षवादी हैं। इनका मत यह है कि बाह्य वस्तु क्षणिक हैं, और उनका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। सौत्रान्तिक बाह्यानुमेयवादी हैं। इनका मत यह है, कि बाह्य पदार्थ जो क्षणिक हैं, प्रत्यक्षगम्य नहीं हैं, बल्कि मन में उनकी जो चेतना उत्पन्न होती है, उससे उनका अनुमान किया जाता है। योगाचार सम्प्रदाय विज्ञानवादी है। इसका मत यह है कि समस्त बाह्य वस्तु मिथ्या हैं, और चित्त में जो कि विज्ञान सन्तान मात्र है, विज्ञान उत्पन्न होते हैं, जो निरावलम्बन हैं। योगाचार आलय-विज्ञानवादी हैं। माध्यमिक सम्प्रदाय का मत यह है कि न बाह्य वस्तुओं की सत्ता है, और न आन्तरिक विज्ञानों की। ये दोनों ही संवृति मात्र हैं। तत्त्व



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निःस्वभाव है, अनिर्वाच्य है, और अज्ञेय है। कुछ बौद्ध विद्वान केवल निरपेक्ष चैतन्य को ही सत्य मानते हैं।

जैन-दर्शन मूल में द्वैतवादी दर्शन हैं। वह जीव की सत्ता को भी स्वीकार करता है, और जीव से भिन्न पुद्गल की सत्ता को भी सत्य स्वीकार करता है। जैन-दर्शन ईश्वरवादी-दर्शन नहीं है। जैनों के चार सम्प्रदाय हैं—श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानकवासी और तेरापंथी। इन चारों सम्प्रदायों में मूल तत्त्व के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का मतभेद नहीं है। तत्त्व सम्बन्धी अथवा दार्शनिक किसी प्रकार का मतभेद इन चारों सम्प्रदायों में नहीं रहा, परन्तु आचार-पक्ष को लेकर इन चारों में कुछ विचार भेद रहा है। वास्तव में अहिंसा और अपरिग्रह की व्याख्या में मतभेद होने के कारण ही ये चारों सम्प्रदाय अस्तित्व में आए हैं, किन्तु तात्त्विक दृष्टि से इनमें आज तक भी किसी प्रकार का भेद नहीं रहा। चार्वाकों में भी अनेक सम्प्रदाय रहे थे—जैसे चार भूतवादी और पांच भूतवादी। इस प्रकार भारत के दार्शनिक-सम्प्रदाय अपनी-अपनी पद्धति से भारतीय-दर्शन शास्त्र का विकास करते रहे हैं।

**भारतीय-दर्शनों के सामान्य सिद्धान्त**

भारतीय-दर्शनों के सामान्य सिद्धान्तों में मुख्य रूप से चार हैं—आत्मवाद, कर्मवाद, परलोकवाद और मोक्षवाद। इन चारों विचारों में भारतीय-दर्शन के सभी सामान्य सिद्धान्त समाविष्ट हो जाते हैं। जो आत्मवाद में विश्वास रखता है, उसे कर्मवाद में भी विश्वास रखना ही होगा और जो कर्मवाद को स्वीकार करता है, उसे परलोकवाद भी स्वीकार करना ही होगा और जो परलोकवाद को स्वीकार कर लेता है उसे स्वर्ग और मोक्ष पर भी विश्वास करना ही होता है। इस प्रकार भारतीय-दर्शनों के सर्व-सामान्य सिद्धान्त अथवा सर्वमान्य सिद्धान्त ये चार ही रहे हैं। इन चारों के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा विचार नहीं है, जो इन चारों में नहीं आ जाता हो। फिर भी यदि हम प्रमाण-मीमांसा को लें, तो वह भी भारतीय-दर्शन का एक अविभाज्य अंग रही है। प्रत्येक दर्शन की शाखा ने प्रमाण की व्याख्या की है, और उसके भेद एवं उपभेदों की विचारणा की है। फिर आचार-शास्त्र को भी यदि लिया जाए तो प्रत्येक भारतीय-दर्शन की शाखा का अपना एक आचार-शास्त्र भी रहा है। इस आचार-शास्त्र को हम उस दर्शन का साधना-पक्ष भी कह सकते हैं।

प्रत्येक दर्शन-परम्परा अपनी पद्धति से अपने द्वारा प्रतिपादित तत्त्व-ज्ञान को जब जीवन में उतारने का प्रयत्न करती है तब उसे साधना कहा जाता है। यह साधना-पक्ष भी प्रत्येक भारतीय-दर्शन का एक अभिन्न अंग रहा है। दुःख-निवृत्ति और सुख की प्राप्ति यह भी प्रत्येक दर्शन का अपना एक विशिष्ट ध्येय रहा है। यह स्वाभाविक है कि मनुष्य को अपने वर्तमान जीवन से असन्तोष हो। जीवन में प्रतीत होने वाले प्रतिकूल भाव, दुःख एवं क्लेशों से व्याकुल होकर मनुष्य उनसे छुटकारा प्राप्त करने की बात सोचे, यह स्वाभाविक है। भारत के प्रत्येक दर्शन ने फिर भले ही वह किसी भी परम्परा का क्यों न रहा हो, वर्तमान जीवन को दुखमय एवं क्लेशमय माना है। इसका अर्थ यही होता है कि जीवन में जो कुछ दुःख और क्लेश है, उसे दूर करने का प्रयत्न किया जाए। क्योंकि दुःखनिवृत्ति और सुखप्राप्ति प्रत्येक आत्मा का स्वाभाविक अधिकार है।

भारत के इस दृष्टिकोण को लेकर पाश्चात्य-दार्शनिकों ने इसे निराशावादी अथवा पलायनवादी कहा है। परन्तु उन लोगों का कथन न तर्क-संगत है, और न भारतीय-दर्शन की मर्यादा के अनुकूल ही। भारतीय-दर्शन में त्याग और वैराग्य की जो चर्चा की गई है, उसका अर्थ जीवन से पराङ्मुख बनना नहीं है, बल्कि वर्तमान जीवन के असन्तोष के कारण चित्त में जो एक व्याकुलता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहती है, उसे दूर करने के लिए ही भारतीय-दार्शनिकों ने त्याग और वैराग्य की बात कही है। यह दुःखवादी विचारधारा बौद्ध-दर्शन में अतिरेकवादी बन गई है। इसे किसी अंश में स्वीकार करना ही होगा। जैन-दर्शन भी इस दुःखवादी परम्परा में सम्मिलित रहा है। सांख्य-दर्शन के प्रारम्भ में ही इस तथ्य को स्वीकार किया गया है कि तीन प्रकार के दुःख से व्याकुल यह आत्मा सुख और शान्ति की खोज करना चाहता है। इस प्रकार भारतीय-दर्शनों में दुःखवादी विचारधारा रही है, इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता। एक मात्र सुख का अनुसन्धान ही उसका मुख्य उद्देश्य रहा है।

**भारतीय दर्शनों में आत्मवाद**

भारत के सभी दर्शन आत्मा के अस्तित्व में विश्वास करते हैं। न्याय और वैशेषिक आत्मा को एक अविनश्वर और नित्य पदार्थ मानते हैं। इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान को उसके विशेष गुण मानते हैं। आत्मा ज्ञाता- कर्त्ता और भोक्ता है। ज्ञान, अनुभूति और संकल्प आत्मा के धर्म हैं। चैतन्य आत्मा का स्वरूप है।

मीमांसा-दर्शन का भी मत यही है। मीमांसा-दर्शन आत्मा को नित्य और विभु मानता है और चैतन्य को उसका आगन्तुक धर्म मानता है। स्वप्न रहित निद्रा तथा मोक्ष की अवस्था में आत्मा चैतन्य गुण से रहित होता है।

सांख्य-दर्शन में पुरुष को नित्य, विभु और चैतन्य स्वरूप माना गया है। इस दर्शन के अनुसार चैतन्य आत्मा का आगन्तुक धर्म नहीं है। पुरुष अकर्त्ता है, वह सुख-दुःख की अनुभूतियों से रहित है। बुद्धि कर्त्ता है, और सुख तथा दुःख के गुणों से युक्त है। बुद्धि प्रकृति का परिणाम है और प्रकृति निरन्तर क्रियाशील है। इसके विपरीत पुरुष शुद्ध चैतन्य स्वरूप है।

अद्वैत वेदान्त आत्मा को विशुद्ध सत्, चित् और आनन्द स्वरूप मानता है। सांख्य अनेक पुरुषों को मानता है, लेकिन ईश्वर को नहीं मानता। अद्वैत केवल एक ही आत्मा को सत्य मानता है। चार्वाक-दर्शन आत्मा की सत्ता को नहीं मानता। वह चैतन्य विशिष्ट शरीर को ही आत्मा कहता है।

बौद्ध-दर्शन आत्मा को ज्ञान, अनुभूति और संकल्पों की एक क्षण में परिवर्तन होने वाली सन्तान मानता है। इसके विपरीत जैन-दर्शन आत्मा को नित्य, अजर और अमर स्वीकार करता है। ज्ञान आत्मा का विशिष्ट गुण है। गुण और गुणी में कथंचित् भेद और कथंचित् अभेद रहता है। जैन-दर्शन मानता है कि आत्मा स्वभावतः अनन्त-ज्ञान, अनन्त-दर्शन, अनन्त-सुख और अनन्त-शक्ति से युक्त है।

इस दृष्टि से प्रत्येक भारतीय-दर्शन आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करता है, और उसकी अपने ढंग से व्याख्या करता है।

**भारतीय-दर्शनों में कर्मवाद**

कर्मवाद यह भारतीय-दर्शन का एक विशिष्ट सिद्धान्त माना जाता है। भारत के प्रत्येक दर्शन की शाखा ने इस कर्मवाद के सिद्धान्त पर भी गम्भीर विचार किया है। जीवन में जो सुख और दुःख की अनुभूति होती है, उसका कोई आधार अवश्य होना चाहिए। इसका आधार एक मात्र कर्मवाद ही हो सकता है। इस संसार में जो विचित्रता और विविधता का दर्शन होता है, उसका आधार प्रत्येक व्यक्ति का अपना कर्म ही होता है। कर्मवाद के सम्बन्ध में जितना गंभीर और विस्तृत विवेचन जैन-परम्परा के ग्रंथों में उपलब्ध है, उतना अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। एक चार्वाक-दर्शन को छोड़कर शेष सभी भारतीय-दर्शन कर्मवाद के नियम में आस्था एवं विश्वास रखते हैं।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्म का नियम नैतिकता के क्षेत्र में काम करने वाला कारण नियम ही है। इसका अर्थ यह है कि शुभ कर्म का फल अनिवार्यतः सुख होता है, और अशुभ कर्म का फल अनिवार्यतः अशुभ एवं दुःख होता है। अच्छा काम आत्मा में पुण्य उत्पन्न करता है, जो कि सुख-भोग का कारण बनता है। बुरा काम आत्मा में पाप उत्पन्न करता है जो कि दुःख-भोग का कारण बनता है। सुख और दुःख क्रमशः शुभ और अशुभ कर्मों के अनिवार्य फल हैं। इस नैतिक नियम की पकड़ से कोई भी छूट नहीं सकता। शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्म सूक्ष्म संस्कार छोड़ जाते हैं, जो निश्चय ही भावी सुख-दुःख के कारण बनते हैं। वे अवश्य ही समय आने पर अपने फल को उत्पन्न करते हैं। इन फलों का भोग इस जन्म में अथवा भविष्य में किया जाता है, अथवा आगामी जन्मों में किया जाता है। कर्म के नियम के कारण ही आत्मा को इस संसार में जन्म और मरण करना पड़ता है। जन्म और मरण का कारण कर्म ही है।

कर्म के नियम का बीज-रूप सर्व प्रथम ऋग्वेद की ऋतधारा में उपलब्ध होता है। ऋत का अर्थ है—जगत की व्यवस्था एवं नियम। प्रकृति की प्रत्येक घटना अपने नियम के अनुसार ही होती है। प्रकृति के ये नियम ही ऋत हैं। आगे चलकर ऋत की धारणा में मनुष्य के नैतिक नियमों की व्यवस्था का भी समावेश हो गया था। उपनिषदों में भी इस प्रकार के विचार हमें बीज रूप में अथवा सूक्ष्म रूप में उपलब्ध होते हैं। कुछ उपनिषदों में तो कर्म के नियम की नैतिक नियम के रूप में स्पष्ट धारणा की है। मनुष्य जैसा बोता है, वैसा ही काटता है। अच्छे-बुरे कर्मों का फल अच्छे-बुरे रूप में मिलता है। शुभ कर्मों से अच्छा चरित्र बनता है, और अशुभ कर्मों से बुरा। फिर अच्छे चरित्र से अच्छा जन्म मिलता है और बुरे चरित्र से बुरा। उपनिषदों में कहा गया है कि मनुष्य शुभ कर्म करने से धार्मिक बनता है, और अशुभ कर्म करने से पापात्मा बनता है। संसार जन्म और मृत्यु का एक अनन्त चक्र है। मनुष्य अच्छे काम करके अच्छा जन्म पा सकता है, और अन्त में भेद-विज्ञान के द्वारा संसार से मुक्त भी हो सकता है। जैन-आगम में कर्मवाद के शाश्वत नियमों को स्वीकार किया गया है। बौद्ध-दर्शन में (बौद्ध पिटकों में) भी कर्मवाद की मान्यता स्पष्ट रूप से नजर आती है। अतः बौद्ध-दर्शन भी कर्मवादी-दर्शन रहा है। न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग, मीमांसा और वेदान्त-दर्शन में कर्म के नियम में आस्था व्यक्त की गई है। इन दर्शनों का विश्वास है कि अच्छे अथवा बुरे काम अदृष्ट को उत्पन्न करते हैं, जिसका विपाक होने में कुछ समय लगता है। उसके बाद उस व्यक्ति को सुख या दुःख भोगना पड़ता है। कर्म का फल कुछ तो इसी जीवन में और कुछ अगले जीवन में। लेकिन कर्म के फल से कभी बचा नहीं जा सकता। भौतिक व्यवस्था पर कारण-नियम का शासन है और नैतिक व्यवस्था पर कर्म के नियम का शासन रहता है। परन्तु भौतिक व्यवस्था भी नैतिक व्यवस्था के ही उद्देश्य की पूर्ति करती है। इस प्रकार यह देखा जाता है कि भारतीय दर्शनों की प्रत्येक शाखा ने कर्मवाद के नियमों को स्वीकार किया है, और उसकी परिभाषा एवं व्याख्या भी अपनी-अपनी पद्धति से की है।

**भारतीय-दर्शनों में परलोकवाद**

जब भारतीय-दर्शनों में आत्मा को अमर मान लिया गया, और संसारी अवस्था में उसमें सुख एवं दुःख मान लिया गया, तब यह आवश्यक हो जाता है, कि सुख और दुःख को मूल आधार भी माना जाए। और वह मूल आधार कर्मवाद के रूप में भारतीय-दर्शन ने स्वीकार किया। वर्तमान जीवन में आत्मा किस रूप में रहता है? और उसकी स्थिति क्या होती है, इस समस्या में से ही परलोकवाद का जन्म हुआ। परलोकवाद को जन्मान्तरवाद भी कहा जाता है। एक चार्वाक-दर्शन को छोड़कर शेष सभी भारतीय-दर्शनों का परलोकवाद—यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परलोकवाद अथवा जन्मान्तरवाद कर्मवाद के सिद्धान्त का फलित रूप हैं। कर्म का सिद्धान्त यह मांग करता है कि शुभ कर्मों का शुभ फल मिले और अशुभ कर्मों का अशुभ फल मिले। लेकिन सभी कर्मों का फल इसी जन्म में मिलना संभव नहीं है। अतः कर्मफल को भोगने के लिए दूसरा जीवन या जन्म आवश्यक है।

भारतीय-दर्शन के अनुसार यह संसार जन्म और मरण की अनादि शृंखला है। इस जन्म-मरण का कारण क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में सांख्य-दर्शन में कहा गया है कि प्रकृति और पुरुष का भेद-ज्ञान न होना ही इसका कारण है। न्याय और वैशेषिक-दर्शन में कहा गया कि जन्म और मरण का कारण जीव का अज्ञान ही है। वेदान्त-दर्शन में कहा गया कि अविद्या अथवा माया ही इसका मुख्य कारण है। बौद्ध-दर्शन में कहा गया, कि वासना के कारण ही जन्म-मरण होता है। जैन-दर्शन में कहा गया कि कर्म-बद्ध संसारी आत्मा का जो बार-बार जन्म-मरण होता है, उसके पाँच कारण हैं—१. मिथ्यात्व-भाव, २. अविरति, ३. प्रमाद, ४. कषाय तथा ५. शुभ और अशुभ योग। सामान्य भाषा में जब तत्त्व-ज्ञान से अज्ञान का नाश हो जाता है तब संसार का भी अन्त आ जाता है। भारतीय-दर्शनों में भी कहा गया है, कि संसार एक बन्धन है, इस बन्धन का आत्यन्तिक नाश आत्मा के शुद्ध स्वरूप—मोक्ष—से ही होता है। बन्धन का कारण अज्ञान है और इसीसे संसार की उत्पत्ति होती है। इसके कारण मोक्ष का कारण तत्त्व-ज्ञान है। तत्त्व-ज्ञान के हो जाने पर संसार का भी अन्त हो जाता है। इस प्रकार तत्त्व-ज्ञान और उसका विपरीत भाव अज्ञान, अविद्या, माया, वासना और कर्म को माना गया है।

जन्मान्तर, भवान्तर, पुनर्जन्म और परलोक का अर्थ है—मृत्यु के बाद आत्मा का दूसरा शरीर धारण करना। चार्वाक-दर्शन ने यह माना था कि शरीर के विनाश के साथ चेतन-शक्ति का भी विनाश हो जाता है। परन्तु आत्मा की अमरता में विश्वास करने वाले दार्शनिकों का कहना है कि शरीर के नाश होने से आत्मा का नाश नहीं होता। इस वर्तमान शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा बना रहता है, और पूर्वकृतकर्मों का फल भोगने के लिए आत्मा को दूसरा जन्म धारण करना पड़ता है। दूसरा जन्म ग्रहण करना ही पुनर्जन्म कहा जाता है। पशु, पक्षी, मनुष्य, देव और नारक आदि अनेक प्रकार के जन्म ग्रहण करना यह संसारी आत्मा का आवश्यक परिणाम है। आत्मा अनेक जन्म तभी ग्रहण कर सकता है जब वह नित्य और अविच्छिन्न हो। सभी आस्तिक-दर्शन आत्मा की नित्यता को स्वीकार करते हैं।

चार्वाक-दर्शन शरीर, प्राण अथवा मन से भिन्न आत्मा जैसी नित्य वस्तु को स्वीकार नहीं करता। अतः उसके मत में जन्मान्तर अथवा पुनर्जन्म जैसी वस्तु मान्य नहीं है। बौद्ध-दार्शनिक आत्मा को क्षणिक विज्ञानों की एक सन्तति मात्र मानते हैं। उनके अनुसार आत्मा क्षण-क्षण में बदलता है। जो आत्मा पूर्व क्षण में था, वह उत्तर क्षण में नहीं रहता। इस प्रकार नदी के प्रवाह के समान वे चित्त-सन्तति के प्रवाह को स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि आत्मा की संन्तति नित्य प्रवहमान रहती है। इस प्रकार क्षणिकता को स्वीकार करने पर भी वे जन्मान्तर और पुनर्जन्म को भी स्वीकार करते हैं। उनकी मान्यता के अनुसार एक विज्ञान सन्तान का अन्तिम विज्ञान सभी पूर्व विज्ञानों की वासनाओं को आत्मसात् करता है, और एक नया शरीर धारण कर लेता है। बौद्ध मत के अनुसार वासना को संस्कार भी कहा गया है। इस प्रकार बौद्धदार्शनिक आत्मा की नित्यता तो नहीं मानते, लेकिन विज्ञान-सन्तान की अविच्छन्नता को अवश्य ही स्वीकार करते हैं।

जैन-दार्शनिक आत्मा को केवल नित्य नहीं, परिणामी-नित्य मानते हैं। आत्मा द्रव्यदृष्टि



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से नित्य है, और पर्यायदृष्टि से अनित्य। क्योंकि पर्याय प्रतिक्षण बदलता रहता है। इस बदलने पर भी द्रव्य का द्रव्यत्व कभी नष्ट नहीं होता। जैन-दार्शनिक पुनर्जन्म को स्वीकार करते हैं। क्योंकि प्रत्येक आत्मा अपने कर्मों के अनुसार अनेक गति एवं योनियों को प्राप्त होती रहती है। जैसे—कोई एक आत्मा जो आज मनुष्य शरीर में है, भविष्य में वह अपने शुभ या अशुभ कर्मों के अनुसार देव और नारक भी बन सकता है। एक जन्म के बाद दूसरे जन्म को धारण करना इसी को जन्मान्तर या भवान्तर कहा जाता है। इस प्रकार समस्त भारतीय-दार्शनिक परम्पराएँ पुनर्जन्म को स्वीकार करती हैं।

**भारतीय-दर्शन में मोक्ष एवं निर्वाण**

आस्तिक-दार्शनिकों के सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि क्या कभी आत्मा की इस प्रकार की भी स्थिति होगी कि उसका पुनर्जन्म अथवा जन्मान्तर मिट जाए? इस प्रकार के उत्तर में उनका कहना है कि मोक्ष, मुक्ति अथवा निर्वाण ही वह स्थिति है, जहां पहुँचकर आत्मा का जन्मान्तर या पुनर्जन्म मिट जाता है। यही कारण है, कि आत्मा की अमरता में आस्था रखने वाले आस्तिक दर्शनों ने मोक्ष की स्थिति को एक स्वर से स्वीकार किया है।

चार्वाक-दर्शन का कहना है. कि मरण ही अपवर्ग अथवा मोक्ष है। मोक्ष का सिद्धान्त सभी भारतीय-दर्शनों को मान्य है। भौतिकवादी होने के कारण एक चार्वाक ही उसको स्वीकार नहीं करता। क्योंकि वह आत्मा की शरीर से भिन्न सत्ता नहीं मानता। अतः उसके दर्शन में आत्मा के मोक्ष का प्रश्न नहीं उठता। चार्वाक की दृष्टि में इस जीवन में अथवा इसी लोक में सुख भोग करना मोक्ष है। इससे भिन्न इस प्रकार के मोक्ष की कल्पना वह नहीं कर सकता, जिसमें आत्मा एक लोकातीत अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

बौद्ध-दर्शन में आत्मा की इस लोकातीत अवस्था को मोक्ष न कहकर निर्वाण कहा गया है। यद्यपि निर्वाण शब्द जैन-ग्रन्थों एवं जैन-आगमों में भी बहुलता से उपलब्ध होता है, फिर भी इस का प्रयोग बौद्ध-दर्शन में ही अधिक रूढ़ है। बौद्ध-दर्शन के अनुसार निर्वाण शब्द सब दुःखों के आत्यन्तिक उच्छेद की अवस्था को अभिव्यक्त करता है। निर्वाण शब्द का अर्थ है—बुझ जाना। लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिए कि निर्वाण में आत्मा का आत्यन्तिक विनाश हो जाता है। बौद्ध-दर्शन के अनुसार इसमें आत्यन्तिक विनाश तो अवश्य होता है लेकिन दुःख का होता है, न कि आत्म-सन्तति का। कुछ बौद्ध-दार्शनिक निर्वाण को विशुद्ध आनन्द की अवस्था मानते हैं। इस प्रकार बौद्ध-दर्शन क्षणिकवादी होकर भी जन्मान्तर और निर्वाण को स्वीकार करता है।

जैन-दार्शनिक प्रारम्भ से ही मोक्षवादी रहे हैं। अनन्त-दर्शन, अनन्त-ज्ञान, अनन्तसुख और अनन्त-शक्ति का प्रकट होना ही मोक्ष है। आत्मा अपनी विशुद्ध अवस्था को तब प्राप्त करता है, जबकि वह सम्यक्-दर्शन (श्रद्धा) सम्यक्-ज्ञान, और सम्यक्-चारित्र की साधना के द्वारा कर्म-पुद्गल के आवरण को सर्वथा नष्ट कर देता है। जैन-परम्परा के महान् अध्यात्मवादी आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने समयसार ग्रन्थ में आत्मा के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है—"एक व्यक्ति लम्बे समय से कारागृह में पड़ा हो, और अपने बन्धन की तीव्रता एवं मन्दता को तथा बन्धन के काल को भली-भांति समझता हो, परन्तु जब तक वह अपने बन्धन के वश होकर उसका छेदन करने का प्रयत्न नहीं करता, तब तक लम्बा समय व्यतीत हो जाने पर भी वह छूट नहीं सकता। इसी प्रकार कोई मनुष्य अपने कर्मबन्ध का प्रदेश, स्थिति, प्रकृति और अनुभाग को भली-भांति समझता हो, तो भी इतने मात्र से वह कर्म-बन्धन से मुक्त-उन्मुक्त नहीं हो सकता। वही आत्मा यदि राग एवं द्वेष आदि को हटाकर विशुद्ध हो जाए, तब मोक्ष प्राप्त कर सकता है। बन्धन का विचार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करने मात्र से बन्धन से छुटकारा नहीं मिलता है। छुटकारा पाने के लिए बन्ध को, और आत्मा के स्वभाव को भली-भाँति समझकर बन्धन से विरक्त होना चाहिए। जीव और बन्ध के अलग-अलग लक्षण समझकर प्रज्ञा रूपी छुरी से उन्हें अलग करना चाहिए, तभी बन्धन से छूटता है। बन्ध को छेद कर क्या करना चाहिए। आत्म-स्वरूप में स्थित होना चाहिए। आत्मस्वरूप को किस प्रकार ग्रहण करना चाहिए? इस के उत्तर में कहा गया है कि मुमुक्षु को आत्मा का इस प्रकार विचार करना चाहिए—मैं चेतन स्वरूप हूं, मैं दृष्टा हूँ, मैं ज्ञाता हूँ, शेष जो कुछ भी है, वह मुझसे भिन्न है। शुद्ध आत्मा को समझने वाला व्यक्ति समस्त पर-भावों को परकीय जानकर उनसे अलग हो जाता है। यह पर-भाव से अलग हो जाना ही वास्तविक मोक्ष है[1]।" इस प्रकार जैन-दर्शन में मोक्ष के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। जैन-दर्शन में विशुद्ध आत्म-स्वरूप को प्रकट करने को ही मोक्ष कहा गया है।

साँख्य-दर्शन मोक्ष को प्रकृति और पुरुष का विवेक मानता है। विवेक एक प्रकार का भेद-विज्ञान है। इसके विपरीत बन्ध प्रकृति और पुरुष का अविवेक है। पुरुष नित्य और मुक्त है। अपने अविवेक के कारण वह प्रकृति और उसके विकारों से अपना तादात्म्य मान लेता है। शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और अहंकार—ये सब प्रकृति के विकार हैं, लेकिन अविवेक के कारण पुरुष इन्हें अपना समझ बैठता है। मोक्ष पुरुष की स्वाभाविक अवस्था की प्राप्ति है। बन्ध एक प्रतीति मात्र है, और इसका कारण अविवेक है।

योग-दर्शन मोक्ष को आत्मा का कैवल्य मानता है। कैवल्य आत्मा के प्रकृति के जाल से छूट जाने की एक अवस्था-विशेष है। आत्मा को इस अवस्था की प्राप्ति तब होती है, जब तप और संयम के द्वारा मन से सब कर्म-संस्कार निकल जाते हैं। सांख्य और योग मोक्ष में पुरुष की चिन्मात्र अवस्थिति मानते हैं। इस अवस्था में वह सुख और दुःख से सर्वथा अतीत हो जाता है। क्योंकि सुख और दुःख तो बुद्धि की वृत्तियां मात्र हैं। इन वृत्तियों का आत्यन्तिक अभाव ही सांख्य और योग-दर्शन में मुक्ति है।

न्याय और वैशेषिक-दर्शन मोक्ष को आत्मा की वह अवस्था मानते हैं, जिसमें वह मन और शरीर से अत्यन्त विमुक्त हो जाता है, और सत्ता मात्र रह जाता है। मोक्ष आत्मा की अचेतन अवस्था है, क्योंकि चैतन्य तो उसका एक आगन्तुक धर्म है, स्वरूप नहीं। जब आत्मा का शरीर और मन से संयोग होता है तभी उसमें चैतन्य का उदय होता है। अतः मोक्ष की अवस्था में इन से वियोग होने पर चैतन्य भी चला जाता है। मोक्ष की प्राप्ति तत्त्व-ज्ञान से होती है। यह दुःख के आत्यन्तिक उच्छेद की अवस्था है।

मीमांसा-दर्शन में भी मोक्ष को आत्मा की स्वाभाविक अवस्था की प्राप्ति माना गया है, जिसमें सुख और दुःख का अत्यन्त विनाश हो जाता है। अपनी स्वाभाविक अवस्था में आत्मा अचेतन होता है। मोक्ष दुःख के आत्यन्तिक अभाव की अवस्था है। लेकिन इसमें आनन्द की अनुभूति नहीं होती। आत्मा स्वभावतः सुख और दुःख से अतीत है। मोक्ष की अवस्था में ज्ञान-शक्ति तो रहती है, परन्तु ज्ञान नहीं रहता।

अद्वैत वेदान्त मोक्ष को जीवात्मा और ब्रह्म के एकीभाव की उपलब्धि मानता है। क्योंकि परमार्थतः आत्मा ब्रह्म ही है। आत्मा विशुद्ध, सत्, चित् और आनन्दस्वरूप है। बन्ध मिथ्या है। अविद्या एवं माया ही इसका कारण है। आत्मा अविद्या के कारण शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि

---

१ समयसार, २८८-३००



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और अहंकार के साथ अपना तादात्म्य कर लेता है, जो कि माया निर्मित है। वेदान्त-दर्शन के अनुसार यही मिथ्या तादात्म्य बन्ध का कारण है। अविद्या से आत्मा का बन्धन होता है, और विद्या से इस बन्धन की निवृत्ति होती है। मोक्ष आत्मा की स्वाभाविक अवस्था है। यह न चैतन्य रहित अवस्था है, और न दुःखाभाव मात्र की अवस्था है, बल्कि सत्, चित् और आनन्द की ब्रह्म अवस्था है। यही जीवात्मा के ब्रह्मभाव की प्राप्ति है। इस प्रकार मोक्ष की धारणा समस्त भारतीय-दर्शनों में उपलब्ध होती है। वास्तव में मोक्ष की प्राप्ति दार्शनिक चिन्तन का लक्ष्य रहा है। भारत के सभी दर्शनों में इसके स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है, और अपनी-अपनी पद्धति से प्रत्येक दार्शनिक ने उसकी व्याख्या की है।

**उपसंहार**

भारतीय दर्शनों में जिन तथ्यों का निरूपण किया गया है, उन सब का जीवन के साथ निकट का सम्बन्ध रहा है। भारतीय-दार्शनिकों ने मानव जीवन के समक्ष ऊँचे-से-ऊँचे आदर्श प्रस्तुत किए हैं। वे आदर्श केवल आदर्श ही नहीं रहते, उन्हें जीवन में उतारने का प्रयत्न भी किया जाता है। इस के लिए विभिन्न दार्शनिकों ने विभिन्न प्रकार की साधनाओं का भी प्रतिपादन किया है। ये साधन तीन प्रकार के होते हैं—ज्ञान-योग, कर्म-योग, और भक्ति-योग। जैन-दर्शन में इन्हीं को रत्न-त्रय—सम्यक्-दर्शन सम्यक्-ज्ञान और सम्यक्-चारित्र कहा जाता है। बौद्ध-दर्शन में इन्हें प्रज्ञा, शील और समाधि कहा है। इन तीनों की साधना से प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में उच्च से उच्चतर एवं उच्चतम आदर्शों को प्राप्त कर सकता है। दर्शन का सम्बन्ध केवल बुद्धि एवं तर्क से ही नहीं, बल्कि हृदय एवं क्रिया से भी उसका सम्बन्ध है। यही कारण है कि भारतीय दर्शन की परम्परा के प्रत्येक दार्शनिक-सम्प्रदाय ने श्रद्धान, ज्ञान और आचरण पर बल दिया है। भारतीय दर्शन एवं चिन्तन केवल बौद्धिक-विलास मात्र नहीं है, अपितु वह जीवन की वास्तविक एवं यथार्थ स्थिति का प्रतिपादन भी करता है। अतः वह वास्तविक अर्थ में दर्शन है।

## आनन्द-वचनामृत

- ☐ ऊपर की दिखावट वास्तविकता की निर्णायक नहीं होती, भैंस देखने में काली होती है किन्तु उसका दूध सफेद होता है। इसी प्रकार सज्जन पुरुष—चाहे जैसी मैली वेशभूषा में हों, उनके हृदय में सदा दूध की भांति स्निग्धता भरी रहती है।

- ☐ अध्यात्म के पथ पर चलना नारियल के वृक्ष पर चढ़ना है। नारियल के पेड़ पर चढ़ते समय पग-पग पर फिसलने का भय बना रहता है, किन्तु चढ़ने वाले अभ्यास द्वारा निर्विघ्न चढ़ जाते हैं। इसी प्रकार साधक अभ्यास द्वारा अपने कठोर साधना पथ पर निर्विघ्न चलते हुए लक्ष्य तक पहुंच जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org